रामचरित्मानस

उत्तरकाण्ड

काकभुशुण्डिजी का लोमशजी के पास जाना और शाप तथा अनुग्रह पाना

दोहा :

*** गुर के बचन सुरति करि राम चरन मनु लाग। रघुपति जस गावत फिरउँ छन छन नव अनुराग॥110 क॥

भावार्थ:-

गुरुजी के वचनों का स्मरण करके मेरा मन श्री रामजी के चरणों में लग गया। मैं क्षण-क्षण नया-नया प्रेम प्राप्त करता हुआ श्री रघुनाथजी का यश गाता फिरता था॥110 (क)॥

*** मेरु सिखर बट छायाँ मुनि लोमस आसीन। देखि चरन सिरु नायउँ बचन कहेउँ अति दीन॥110 ख॥

भावार्थ:-

सुमेरु पर्वत के शिखर पर बड़ की छाया में लोमश मुनि बैठे थे। उन्हें देखकर मैंने उनके चरणों में सिर नवाया और अत्यंत दीन वचन कहे॥110 (ख)॥

*** सुनि मम बचन बिनीत मृदु मुनि कृपाल खगराज। मोहि सादर पूँछत भए द्विज आयहु केहि काज॥110 ग॥

भावार्थ:-

हे पक्षीराज! मेरे अत्यंत नम्र और कोमल वचन सुनकर कृपालु मुनि मुझसे आदर के साथ पूछने लगे- हे ब्राह्मण! आप किस कार्य से यहाँ आए हैं॥110 (ग)॥

*** तब मैं कहा कृपानिधि तुम्ह सर्बग्य सुजान। सगुन ब्रह्म अवराधन मोहि कहहु भगवान॥110 घ॥

भावार्थ:-

तब मैंने कहा- हे कृपा निधि! आप सर्वज्ञ हैं और सुजान हैं। हे भगवान् मुझे सगुण ब्रह्म की आराधना (की प्रक्रिया) कहिए। 110 (घ)॥

चौपाई :

*** तब मुनीस रघुपति गुन गाथा। कहे कछुक सादर खगनाथा॥ ब्रह्मग्यान रत मुनि बिग्यानी। मोहि परम अधिकारी जानी॥1॥

भावार्थ:-

तब हे पक्षीराज! मुनीश्वर ने श्री रघुनाथजी के गुणों की कुछ कथाएँ आदर सहित कहीं। फिर वे ब्रह्मज्ञान परायण विज्ञानवान् मुनि मुझे परम अधिकारी जानकर-॥1॥

*** लागे करन ब्रह्म उपदेसा। अज अद्वैत अगुन हृदयेसा॥ अकल अनीह अनाम अरूपा। अनुभव गम्य अखंड अनूपा॥2॥

भावार्थ:-

ब्रह्म का उपदेश करने लगे कि वह अजन्मा है, अद्वैत है, निर्गुण है और हृदय का स्वामी (अंतर्यामी) है। उसे कोई बुद्धि के द्वारा माप नहीं सकता, वह इच्छारहित, नामरहित, रूपरहित, अनुभव से जानने योग्य, अखण्ड और उपमारहित है॥2॥

*** मन गोतीत अमल अबिनासी। निर्बिकार निरवधि सुख रासी॥ सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा। बारि बीचि इव गावहिं बेदा॥3॥

भावार्थ:-

वह मन और इंद्रियों से परे, निर्मल, विनाशरहित, निर्विकार, सीमारहित और सुख की राशि है। वेद ऐसा गाते हैं कि वही तू है, (तत्वमसि), जल और जल की लहर की भाँति उसमें और तुझमें कोई भेद नहीं है॥3॥

*** बिबिधि भाँति मोहि मुनि समुझावा। निर्गुन मत मम हृदयँ न आवा॥ पुनि मैं कहेउँ नाइ पद सीसा। सगुन उपासन कहहु मुनीसा॥4॥

भावार्थ:-

मुनि ने मुझे अनेकों प्रकार से समझाया, पर निर्गुण मत मेरे हृदय में नहीं बैठा। मैंने फिर मुनि के चरणों में सिर नवाकर कहा- हे मुनीश्वर! मुझे सगुण ब्रह्म की उपासना कहिए॥4॥

*** राम भगति जल मम मन मीना। किमि बिलगाइ मुनीस प्रबीना॥ सोइ उपदेस कहहु करि दाया। निज नयनन्हि देखौं रघुराया॥5॥

भावार्थ:-

मेरा मन रामभक्ति रूपी जल में मछली हो रहा है (उसी में रम रहा है)। हे चतुर मुनीश्वर ऐसी दशा में वह उससे अलग कैसे हो सकता है? आप दया करके मुझे वही उपदेश (उपाय) कहिए जिससे मैं श्री रघुनाथजी को अपनी आँखों से देख सकूँ॥5॥

*** भरि लोचन बिलोकि अवधेसा। तब सुनिहउँ निर्गुन उपदेसा॥ मुनि पुनि कहि हरिकथा अनूपा। खंडि सगुन मत अगुन निरूपा॥6॥

भावार्थ:-

(पहले) नेत्र भरकर श्री अयोध्यानाथ को देखकर, तब निर्गुण का उपदेश सुनूँगा। मुनि ने फिर अनुपम हरिकथा कहकर, सगुण मत का खण्डन करके निर्गुण का निरूपण किया॥6॥

*** तब मैं निर्गुन मत कर दूरी। सगुन निरूपउँ करि हठ भूरी॥ उत्तर प्रतिउत्तर मैं कीन्हा। मुनि

तन भए क्रोध के चीन्हा॥7॥

भावार्थ:-

तब मैं निर्गुण मत को हटाकर (काटकर) बहुत हठ करके सगुण का निरूपण करने लगा। मैंने उत्तर-प्रत्युत्तर किया, इससे मुनि के शरीर में क्रोध के चिह्न उत्पन्न हो गए॥7॥

*** सुनु प्रभु बहुत अवग्या किएँ। उपज क्रोध ग्यानिन्ह के हिएँ॥ अति संघरषन जौं कर कोई। अनल प्रगट चंदन ते होई॥8॥

भावार्थ:-

हे प्रभो! सुनिए, बहुत अपमान करने पर ज्ञानी के भी हृदय में क्रोध उत्पन्न हो जाता है। यदि कोई चंदन की लकड़ी को बहुत अधिक रग़ड़े तो उससे भी अग्नि प्रकट हो जाएगी॥8॥

दोहा :

***बारंबार सकोप मुनि करइ निरूपन ग्यान। मैं अपनें मन बैठ तब करउँ बिबिधि अनुमान॥111 क॥

भावार्थ:-

मुनि बार-बार क्रोध सहित ज्ञान का निरूपण करने लगे। तब मैं बैठा-बैठा अपने मन में अनेकों प्रकार के अनुमान करने लगा॥111 (क)॥

***क्रोध कि द्वैतबुद्धि बिनु द्वैत कि बिनु अग्यान। मायाबस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान॥111 ख॥॥2॥

भावार्थ:-

बिना द्वैतबुद्धि के क्रोध कैसा और बिना अज्ञान के क्या द्वैतबुद्धि हो सकती है? माया के वश रहने वाला परिच्छिन्न जड़ जीव क्या ईश्वर के समान हो सकता है?॥111 (ख)॥

*** कबहुँ कि दुःख सब कर हित ताकें। तेहि कि दरिद्र परस मनि जाकें॥ परद्रोही की होहिं निसंका। कामी पुनि कि रहहिं अकलंका॥1॥

भावार्थ:-

सबका हित चाहने से क्या कभी दुःख हो सकता है? जिसके पास पारसमणि है, उसके पास क्या दरिद्रता रह सकती है? दूसरे से द्रोह करने वाले क्या निर्भय हो सकते हैं और कामी क्या कलंकरहित (बेदाग) रह सकते हैं?॥1॥

*** बंस कि रह द्विज अनहित कीन्हें। कर्म की होहिं स्वरूपहि चीन्हें॥ काहू सुमति कि खल सँग जामी। सुभ गति पाव कि परत्रिय गामी॥2॥

भावार्थ:-

ब्राह्मण का बुरा करने से क्या वंश रह सकता है? स्वरूप की पहिचान (आत्मज्ञान) होने पर क्या (आसक्तिपूर्वक) कर्म हो सकते हैं? दुष्टों के संग से क्या किसी के सुबुद्धि उत्पन्न हुई है परस्त्रीगामी क्या उत्तम गति पा सकता है?॥2॥

*** भव कि परहिं परमात्मा बिंदक। सुखी कि होहिं कबहुँ हरिनिंदक॥ राजु कि रहइ नीति बिनु जानें। अघ कि रहहिं हरिचरित बखानें॥3॥

भावार्थ:-

परमात्मा को जानने वाले कहीं जन्म-मरण (के चक्कर) में पड़ सकते हैं? भगवान् की निंदा करने वाले कभी सुखी हो सकते हैं? नीति बिना जाने क्या राज्य रह सकता है? श्री हरि के चरित्र वर्णन करने पर क्या पाप रह सकते हैं?॥3॥

*** पावन जस कि पुन्य बिनु होई। बिनु अघ अजस कि पावइ कोई॥ लाभु कि किछु हरि भगति समाना। जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना॥4॥

भावार्थ:-

बिना पुण्य के क्या पवित्र यश (प्राप्त) हो सकता है? बिना पाप के भी क्या कोई अपयश पा सकता है? जिसकी महिमा वेद, संत और पुराण गाते हैं और उस हरि भक्ति के समान क्या कोई दूसरा लाभ भी है?॥4॥

*** हानि कि जग एहि सम किछु भाई। भजिअ न रामहि नर तनु पाई॥ अघ कि पिसुनता सम कछु आना। धर्म कि दया सरिस हरिजाना॥5॥

भावार्थ:-

हे भाई! जगत् में क्या इसके समान दूसरी भी कोई हानि है कि मनुष्य का शरीर पाकर भी श्री रामजी का भजन न किया जाए? चुगलखोरी के समान क्या कोई दूसरा पाप है? और हे गरुड़जी! दया के समान क्या कोई दूसरा धर्म है?॥5॥

*** एहि बिधि अमिति जुगुति मन गुनऊँ। मुनि उपदेस न सादर सुनउँ॥ पुनि पुनि सगुन पच्छ मैं रोपा। तब मुनि बोलेउ बचन सकोपा॥6॥

भावार्थ:-

इस प्रकार मैं अनगिनत युक्तियाँ मन में विचारता था और आदर के साथ मुनि का उपदेश नहीं सुनता था। जब मैंने बार-बार सगुण का पक्ष स्थापित किया, तब मुनि क्रोधयुक्त वचन बोले॥6॥

*** मूढ़ परम सिख देउँ न मानसि। उत्तर प्रतिउत्तर बहु आनसि॥ सत्य बचन बिस्वास न करही। बायस इव सबही ते डरही॥7॥

भावार्थ:-

अरे मूढ़! मैं तुझे सर्वोत्तम शिक्षा देता हूँ तो भी तू उसे नहीं मानता और बहुत से उत्तरप्रत्युत्तर (दलीलें) लाकर रखता है। मेरे सत्य वचन पर विश्वास नहीं करता। कौए की भाँति सभी से डरता है॥7॥

*** सठ स्वपच्छ तव हृदयँ बिसाला। सपदि होहि पच्छी चंडाला॥ लीन्ह श्राप मैं सीस चढ़ाई। नहिं कछु भय न दीनता आई॥8॥

भावार्थ:-

अरे मूर्ख! तेरे हृदय में अपने पक्ष का बड़ा भारी हठ है, अतः तू शीघ्र चाण्डाल पक्षी (कौआ) हो जा। मैंने आनंद के साथ मुनि के शाप को सिर पर चढ़ा लिया। उससे मुझे न कुछ भय हुआ, न दीनता ही आई॥8॥

दोहा :

*** तुरत भयउँ मैं काग तब पुनि मुनि पद सिरु नाइ। सुमिरि राम रघुबंस मनि हरषित चलेउँ उड़ाइ॥112 क॥

भावार्थ:-

तब मैं तुरंत ही कौआ हो गया। फिर मुनि के चरणों में सिर नवाकर और रघुकुल शिरोमणि श्री रामजी का स्मरण करके मैं हर्षित होकर उड़ चला॥112 (क)॥

*** उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध। निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥112 ख॥

भावार्थ:-

(शिवजी कहते हैं-) हे उमा! जो श्री रामजी के चरणों के प्रेमी हैं और काम, अभिमान तथा क्रोध से रहित हैं, वे जगत् को अपने प्रभु से भरा हुआ देखते हैं फिर वे किससे वैर करें॥112 (ख)॥

चौपाई :

*** सुनु खगेस नहिं कछु रिषि दूषन। उर प्रेरक रघुबंस बिभूषन॥ कृपासिंधु मुनि मति करि भोरी। लीन्ही प्रेम परिच्छा मोरी॥1॥

भावार्थ:-

(काकभुशुण्डिजी ने कहा-) हे पक्षीराज गरुड़जी! सुनिए, इसमें ऋषि का कुछ भी दोष नहीं था। रघुवंश के विभूषण श्री रामजी ही सबके हृदय में प्रेरणा करने वाले हैं। कृपा सागर प्रभु ने मुनि की बुद्धि को भोली करके (भुलावा देकर) मेरे प्रेम की परीक्षा ली॥1॥

*** मन बच क्रम मोहि निज जन जाना। मुनि मति पुनि फेरी भगवाना॥ रिषि मम महत सीलता देखी। राम चरन बिस्वास बिसेषी॥2॥

भावार्थ:-

मन, वचन और कर्म से जब प्रभु ने मुझे अपना दास जान लिया, तब भगवान् ने मुनि की बुद्धि फिर पलट दी। ऋषि ने मेरा महान् पुरुषों का सा स्वभाव (धैर्य, अक्रोध, विनय आदि) और श्री रामजी के चरणों में विशेष विश्वास देखा,॥2॥

*** अति बिसमय पुनि पुनि पछिताई। सादर मुनि मोहि लीन्ह बोलाई॥ मम परितोष बिबिधि बिधि कीन्हा। हरषित राममंत्र तब दीन्हा॥3॥

भावार्थ:-

तब मुनि ने बहुत दुःख के साथ बारम्बार पछताकर मुझे आदरपूर्वक बुला लिया। उन्होंने अनेकों

प्रकार से मेरा संतोष किया और तब हर्षित होकर मुझे राममंत्र दिया॥3॥

*** बालकरूप राम कर ध्याना। कहेउ मोहि मुनि कृपानिधाना॥ सुंदर सुखद मोहि अति भावा। सो प्रथमहिं मैं तुम्हहि सुनावा॥4॥

भावार्थ:-

कृपानिधान मुनि ने मुझे बालक रूप श्री रामजी का ध्यान (ध्यान की विधि) बतलाया। सुंदर और सुख देने वाला यह ध्यान मुझे बहुत ही अच्छा लगा। वह ध्यान मैं आपको पहले ही सुना चुका हूँ॥4॥

*** मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा। रामचरितमानस तब भाषा॥ सादर मोहि यह कथा सुनाई। पुनि बोले मुनि गिरा सुहाई॥5॥

भावार्थ:-

मुनि ने कुछ समय तक मुझको वहाँ (अपने पास) रखा। तब उन्होंने रामचरित मानस वर्णन किया। आदरपूर्वक मुझे यह कथा सुनाकर फिर मुनि मुझसे सुंदर वाणी बोले॥5॥

*** रामचरित सर गुप्त सुहावा। संभु प्रसाद तात मैं पावा॥ तोहि निज भगत राम कर जानी। ताते मैं सब कहेउँ बखानी॥6॥

भावार्थ:-

हे तात! यह सुंदर और गुप्त रामचरित मानस मैंने शिवजी की कृपा से पाया था। तुम्हें श्री रामजी का 'निज भक्त' जाना, इसी से मैंने तुमसे सब चरित्र विस्तार के साथ कहा॥6॥

*** राम भगति जिन्ह कें उर नाहीं। कबहुँ न तात कहिअ तिन्ह पाहीं॥ मुनि मोहि बिबिधि भाँति समुझावा। मैं सप्रेम मुनि पद सिरु नावा॥7॥

भावार्थ:-

हे तात! जिनके हृदय में श्री रामजी की भक्ति नहीं है, उनके सामने इसे कभी भी नहीं कहना चाहिए। मुनि ने मुझे बहुत प्रकार से समझाया। तब मैंने प्रेम के साथ मुनि के चरणों में सिर नवाया॥7॥

*** निज कर कमल परसि मम सीसा। हरषित आसिष दीन्ह मुनीसा॥ राम भगति अबिरल उर तोरें। बसिहि सदा प्रसाद अब मोरें॥8॥

भावार्थ:-

मुनीश्वर ने अपने करकमलों से मेरा सिर स्पर्श करके हर्षित होकर आशीर्वाद दिया कि अब मेरी कृपा से तेरे हृदय में सदा प्रगाढ़ राम भक्ति बसेगी॥8॥

दोहा :

*** सदा राम प्रिय होहु तुम्ह सुभ गुन भवन अमान। कामरूप इच्छामरन ग्यान बिराग निधान॥113 क॥

भावार्थ:-

तुम सदा श्री रामजी को प्रिय होओ और कल्याण रूप गुणों के धाम, मानरहित, इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ, इच्छा मृत्यु (जिसकी शरीर छोड़ने की इच्छा करने पर ही मृत्यु हो, बिना इच्छा के मृत्यु न हो) एवं ज्ञान और वैराग्य के भण्डार होओ॥113 (क)॥

*** जेहिं आश्रम तुम्ह बसब पुनि सुमिरत श्रीभगवंत। ब्यापिहि तहँ न अबिद्या जोजन एक प्रजंत॥113 ख॥

भावार्थ:-

इतना ही नहीं, श्री भगवान् को स्मरण करते हुए तुम जिस आश्रम में निवास करोगे वहाँ एक योजन (चार कोस) तक अविद्या (माया मोह) नहीं व्यापेगी॥113 (ख)॥

चौपाई :

*** काल कर्म गुन दोष सुभाऊ। कछु दुख तुम्हहि न ब्यापिहि काऊ॥ राम रहस्य ललित बिधि नाना। गुप्त प्रगट इतिहास पुराना॥1॥

भावार्थ:-

काल, कर्म, गुण, दोष और स्वभाव से उत्पन्न कुछ भी दुःख तुमको कभी नहीं व्यापेगा। अनेकों प्रकार के सुंदर श्री रामजी के रहस्य (गुप्त मर्म के चरित्र और गुण), जो इतिहास और पुराणों में गुप्त और प्रकट हैं। (वर्णित और लक्षित हैं)॥1॥

*** बिनु श्रम तुम्ह जानब सब सोऊ। नित नव नेह राम पद होऊ॥ जो इच्छा करिहहु मन माहीं हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं॥2॥

भावार्थ:-

तुम उन सबको भी बिना ही परिश्रम जान जाओगे। श्री रामजी के चरणों में तुम्हारा नित्य नया प्रेम हो। अपने मन में तुम जो कुछ इच्छा करोगे, श्री हरि की कृपा से उसकी पूर्ति कुछ भी दुर्लभ नहीं होगी॥2॥।

*** सुनि मुनि आसिष सुनु मतिधीरा। ब्रह्मगिरा भइ गगन गँभीरा॥ एवमस्तु तव बच मुनि ग्यानी। यह मम भगत कर्म मन बानी॥3॥

भावार्थ:-

हे धीरबुद्धि गरुड़जी! सुनिए, मुनि का आशीर्वाद सुनकर आकाश में गंभीर ब्रह्मवाणी हुई कि हे ज्ञानी मुनि! तुम्हारा वचन ऐसा ही (सत्य) हो। यह कर्म, मन और वचन से मेरा भक्त है॥3॥

*** सुनि नभगिरा हरष मोहि भयऊ। प्रेम मगन सब संसय गयऊ॥ करि बिनती मुनि आयसु पाई। पद सरोज पुनि पुनि सिरु नाई॥4॥

भावार्थ:-

आकाशवाणी सुनकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। मैं प्रेम में मग्न हो गया और मेरा सब संदेह जाता रहा। तदनन्तर मुनि की विनती करके, आज्ञा पाकर और उनके चरणकमलों में बार-बार सिर नवाकर-

॥4॥

*** हरष सहित एहिं आश्रम आयउँ। प्रभु प्रसाद दुर्लभ बर पायउँ॥ इहाँ बसत मोहि सुनु खग ईसा। बीते कलप सात अरु बीसा॥5॥

भावार्थ:-

मैं हर्ष सहित इस आश्रम में आया। प्रभु श्री रामजी की कृपा से मैंने दुर्लभ वर पा लिया। हे पक्षीराज! मुझे यहाँ निवास करते सत्ताईस कल्प बीत गए॥5॥

*** करउँ सदा रघुपति गुन गाना। सादर सुनहिं बिहंग सुजाना॥ जब जब अवधपुरीं रघुबीरा। धरहिं भगत हित मनुज सरीरा॥6॥

भावार्थ:-

मैं यहाँ सदा श्री रघुनाथजी के गुणों का गान किया करता हूँ और चतुर पक्षी उसेआदरपूर्वक सुनते हैं। अयोध्यापुरी में जब-जब श्री रघुवीर भक्तों के (हित के) लिए मनुष्य शरीर धारण करते हैं,॥6॥

*** तब तब जाइ राम पुर रहऊँ। सिसुलीला बिलोकि सुख लहऊँ॥ पुनि उर राखि राम सिसुरूपा। निज आश्रम आवउँ खगभूपा॥7॥

भावार्थ:-

तब-तब मैं जाकर श्री रामजी की नगरी में रहता हूँ और प्रभु की शिशुलीला देखकर सुख प्राप्त करता हूँ। फिर हे पक्षीराज! श्री रामजी के शिशु रूप को हृदय में रखकर मैं अपने आश्रम में आ जाता हूँ॥7॥

*** कथा सकल मैं तुम्हहि सुनाई। काग देहि जेहिं कारन पाई॥ कहिउँ तात सब प्रस्न तुम्हारी। राम भगति महिमा अति भारी॥8॥

भावार्थ:-

जिस कारण से मैंने कौए की देह पाई, वह सारी कथा आपको सुना दी। हे तात! मैंने आपके सब प्रश्नों के उत्तर कहे। अहा! रामभक्ति की बड़ी भारी महिमा है॥8॥

दोहा :

*** ताते यह तन मोहि प्रिय भयउ राम पद नेह। निज प्रभु दरसन पायउँ गए सकल संदेह॥114 क॥

भावार्थ:-

मुझे अपना यह काक शरीर इसीलिए प्रिय है कि इसमें मुझे श्री रामजी के चरणों का प्रेम प्राप्त हुआ। इसी शरीर से मैंने अपने प्रभु के दर्शन पाए और मेरे सब संदेह जाते रहे (दूर हुए)॥114 (क)॥

मासपारायण, उनतीसवाँ विश्राम

ज्ञान-भक्ति-निरुपण, ज्ञान-दीपक और भक्ति की महान् महिमा

*** भगति पच्छ हठ करि रहेउँ दीन्हि महारिषि साप। मुनि दुर्लभ बर पायउँ देखहु भजन प्रताप॥114 ख॥

भावार्थ:-

मैं हठ करके भक्ति पक्ष पर अड़ा रहा, जिससे महर्षि लोमश ने मुझे शाप दिया, परंतु उसका फल यह हुआ कि जो मुनियों को भी दुर्लभ है, वह वरदान मैंने पाया। भजन का प्रताप तो देखिए!॥114 (ख)॥

चौपाई :

*** जे असि भगति जानि परिहरहीं। केवल ग्यान हेतु श्रम करहीं॥ ते जड़ कामधेनु गृहँ त्यागी। खोजत आकु फिरहिं पय लागी॥1॥

भावार्थ:-

जो भक्ति की ऐसी महिमा जानकर भी उसे छोड़ देते हैं और केवल ज्ञान के लिए श्रम (साधन) करते हैं, वे मूर्ख घर पर खड़ी हुई कामधेनु को छोड़कर दूध के लिए मदार के पेड़ को खोजते फिरते हैं॥1॥

*** सुनु खगेस हरि भगति बिहाई। जे सुख चाहहिं आन उपाई॥ ते सठ महासिंधु बिनु तरनी। पैरि पार चाहहिं जड़ करनी॥2॥

भावार्थ:-

हे पक्षीराज! सुनिए, जो लोग श्री हरि की भक्ति को छोड़कर दूसरे उपायों से सुख चाहते हैं, वे मूर्ख और जड़ करनी वाले (अभागे) बिना ही जहाज के तैरकर महासमुद्र के पार जाना चाहते हैं॥2॥

*** सुनि भसुंडि के बचन भवानी। बोलेउ गरुड़ हरषि मृदु बानी॥ तव प्रसाद प्रभु मम उर माहीं। संसय सोक मोह भ्रम नाहीं॥3॥

भावार्थ:-

(शिवजी कहते हैं-) हे भवानी! भुशुण्डिजी के वचन सुनकर गरुड़जी हर्षित होकर कोमल वाणी से बोले- हे प्रभो! आपके प्रसाद से मेरे हृदय में अब संदेह, शोक, मोह और कुछ भी नहीं रह गया॥3॥

*** सुनेउँ पुनीत राम गुन ग्रामा॥ तुम्हरी कृपाँ लहेउँ बिश्रामा॥ एक बात प्रभु पूँछउँ तोही। कहहु बुझाइ कृपानिधि मोही॥4॥

भावार्थ:-

मैंने आपकी कृपा से श्री रामचंद्रजी के पवित्र गुण समूहों को सुना और शांति प्राप्त की। हे प्रभो अब मैं आपसे एक बात और पूछता हूँ। हे कृपासागर मुझे समझाकर कहिए॥4॥

*** कहहिं संत मुनि बेद पुराना। नहिं कछु दुर्लभ ग्यान समाना॥ सोइ मुनि तुम्ह सन कहेउ

गोसाईं। नहिं आदरेहु भगति की नाईं॥5॥

भावार्थ:-

संत मुनि, वेद और पुराण यह कहते हैं कि ज्ञान के समान दुर्लभ कुछ भी नहीं है। हे गोसाईं! वही ज्ञान मुनि ने आपसे कहा, परंतु आपने भक्ति के समान उसका आदर नहीं किया॥5॥

*** ग्यानहि भगतिहि अंतर केता। सकल कहहु प्रभु कृपा निकेता॥ सुनि उरगारि बचन सुख माना। सादर बोलेउ काग सुजाना॥6॥

भावार्थ:-

हे कृपा के धाम! हे प्रभो! ज्ञान और भक्ति में कितना अंतर है? यह सब मुझसे कहिए। गरुड़जी के वचन सुनकर सुजान काकभुशुण्डिजी ने सुख माना और आदर के साथ कहा॥6॥

*** भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा॥ नाथ मुनीस कहहिं कछु अंतर। सावधान सोउ सुनु बिहंगबर॥7॥

भावार्थ:-

भक्ति और ज्ञान में कुछ भी भेद नहीं है। दोनों ही संसार से उत्पन्न क्लेशों को हर लेते हैं। हे नाथ! मुनीश्वर इनमें कुछ अंतर बतलाते हैं। हे पक्षीश्रेष्ठ! उसे सावधान होकर सुनिए॥7॥

*** ग्यान बिराग जोग बिग्याना। ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना॥ पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती। अबला अबल सहज जड़ जाती॥8॥

भावार्थ:-

बहे हरि वाहन! सुनिए, ज्ञान, वैराग्य, योग, विज्ञान- ये सब पुरुष हैं। पुरुष का प्रताप सब प्रकार से प्रबल होता है। अबला (माया) स्वाभाविक ही निर्बल और जाति (जन्म) से ही जड़ (मूर्ख) होती है॥8॥

दोहा :

*** पुरुष त्यागि सक नारिहि जो बिरक्त मति धीर। न तु कामी बिषयाबस बिमुख जो पद रघुबीर॥115 क॥

भावार्थ:-

परंतु जो वैराग्यवान् और धीरबुद्धि पुरुष हैं वही स्त्री को त्याग सकते हैं, न कि वे कामी पुरुष, जो विषयों के वश में हैं (उनके गुलाम हैं) और श्री रघुवीर के चरणों से विमुख हैं॥115 (क)॥

सोरठा :

*** सोउ मुनि ग्याननिधान मृगनयनी बिधु मुख निरखि। बिबस होइ हरिजान नारि बिष्नु माया प्रगट॥115 ख॥

भावार्थ:-

वे ज्ञान के भण्डार मुनि भी मृगनयनी (युवती स्त्री) के चंद्रमुख को देखकर विवश (उसके अधीन) हो जाते हैं। हे गरुड़जी! साक्षात् भगवान विष्णु की माया ही स्त्री रूप से प्रकट है॥115 (ख)॥

चौपाई :

*** इहाँ न पच्छपात कछु राखउँ। बेद पुरान संत मत भाषउँ॥ मोह न नारि नारि कें रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा॥1॥

भावार्थ:-

यहाँ मैं कुछ पक्षपात नहीं रखता। वेद, पुराण और संतों का मत (सिद्धांत) ही कहता हूँ। हे गरुड़जी! यह अनुपम (विलक्षण) रीति है कि एक स्त्री के रूप पर दूसरी स्त्री मोहित नहीं होती॥1॥

*** माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ। नारि बर्ग जानइ सब कोऊ॥ पुनि रघुबीरहि भगति पिआरी। माया खलु नर्तकी बिचारी॥2॥

भावार्थ:-

आप सुनिए, माया और भक्ति- ये दोनों ही स्त्री वर्ग की हैं, यह सब कोई जानते हैं। फिर श्री रघुवीर को भक्ति प्यारी है। माया बेचारी तो निश्चय ही नाचने वाली (नटिनी मात्र) है॥2॥

*** भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया॥ राम भगति निरुपम निरुपाधी। बसइ जासु उर सदा अबाधी॥3॥

भावार्थ:-

श्री रघुनाथजी भक्ति के विशेष अनुकूल रहते हैं। इसी से माया उससे अत्यंत डरती रहती है। जिसके हृदय में उपमारहित और उपाधिरहित (विशुद्ध) रामभक्ति सदा बिना किसी बाधा (रोक-टोक) के बसती है,॥3॥

*** तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकइ कछु निज प्रभुताई॥ अस बिचारि जे मुनि बिग्यानी। जाचहिं भगति सकल सुख खानी॥4॥

भावार्थ:-

उसे देखकर माया सकुचा जाती है। उस पर वह अपनी प्रभुता कुछ भी नहीं कर (चला) सकती। ऐसा विचार कर ही जो विज्ञानी मुनि हैं, वे भी सब सुखों की खानि भक्ति की ही याचना करते हैं॥4॥

दोहा :

*** यह रहस्य रघुनाथ कर बेगि न जानइ कोइ। जो जानइ रघुपति कृपाँ सपनेहुँ मोह न होइ॥116 क॥

भावार्थ:-

श्री रघुनाथजी का यह रहस्य (गुप्त मर्म) जल्दी कोई भी नहीं जान पाता। श्री रघुनाथजी की कृपा से जो इसे जान जाता है, उसे स्वप्न में भी मोह नहीं होता॥116 (क)॥

*** औरउ ग्यान भगति कर भेद सुनहु सुप्रबीन। जो सुनि होइ राम पद प्रीति सदा अबिछीन॥116 ख॥

भावार्थ:-

हे सुचतुर गरुड़जी! ज्ञान और भक्ति का और भी भेद सुनिए, जिसके सुनने से श्री रामजी के चरणों में सदा अविच्छिन्न (एकतार) प्रेम हो जाता है॥116 (ख)॥

चौपाई :

*** सुनहु तात यह अकथ कहानी। समुझत बनइ न जाइ बखानी॥ ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥1॥

भावार्थ:-

हे तात! यह अकथनीय कहानी (वार्ता) सुनिए। यह समझते ही बनती है, कही नहीं जा सकती। जीव ईश्वर का अंश है। (अतएव) वह अविनाशी, चेतन, निर्मल और स्वभाव से ही सुख की राशि है॥1॥

*** सो मायाबस भयउ गोसाईं। बँध्यो कीर मरकट की नाईं॥ जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई॥2॥

भावार्थ:-

हे गोसाईं ! वह माया के वशीभूत होकर तोते और वानर की भाँति अपने आप ही बँध गया। इस प्रकार जड़ और चेतन में ग्रंथि (गाँठ) पड़ गई। यद्यपि वह ग्रंथि मिथ्या ही है, तथापि उसके छूटने में कठिनता है॥2॥

*** तब ते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी॥ श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई॥3॥

भावार्थ:-

तभी से जीव संसारी (जन्मने-मरने वाला) हो गया। अब न तो गाँठ छूटती है और न वह सुखी होता है। वेदों और पुराणों ने बहुत से उपाय बतलाए हैं पर वह (ग्रंथि) छूटती नहीं वरन अधिकाधिक उलझती ही जाती है॥3॥

*** जीव हृदयँ तम मोह बिसेषी। ग्रंथि छूट किमि परइ न देखी॥ अस संजोग ईस जब करई। तबहुँ कदाचित सो निरुअरई॥4॥

भावार्थ:-

जीव के हृदय में अज्ञान रूपी अंधकार विशेष रूप से छा रहा है, इससे गाँठ देख ही नहीं पड़ती, छूटे तो कैसे? जब कभी ईश्वर ऐसा संयोग (जैसा आगे कहा जाता है) उपस्थित कर देते हैं तब भी कदाचित् ही वह (ग्रंथि) छूट पाती है॥4॥

*** सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जौं हरि कृपाँ हृदयँ बस आई॥ जप तप ब्रत जम नियम अपारा। जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा॥5॥

भावार्थ:-

श्री हरि की कृपा से यदि सात्विकी श्रद्धा रूपी सुंदर गो हृदय रूपी घर में आकर बस जाए, असंख्य

जप, तप व्रत यम और नियमादि शुभ धर्म और आचार (आचरण), जो श्रुतियों ने कहे हैं,॥5॥
*** तेइ तृन हरित चरै जब गाई। भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई॥ नोइ निबृत्ति पात्र बिस्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा॥6॥
भावार्थ:-
उन्हीं (धर्माचार रूपी) हरे तृणों (घास) को जब वह गो चरे और आस्तिक भाव रूपी छोटे बछड़े को पाकर वह पेन्हावे। निवृत्ति (सांसारिक विषयों से और प्रपंच से हटना) नोई (गो के दुहते समय पिछले पैर बाँधने की रस्सी) है, विश्वास (दूध दुहने का) बरतन है, निर्मल (निष्पाप) मन जो स्वयं अपना दास है। (अपने वश में है), दुहने वाला अहीर है॥6॥
*** परम धर्ममय पय दुहि भाई। अवटै अनल अकाम बनाई॥ तोष मरुत तब छमाँ जुड़ावै। धृति सम जावनु देइ जमावै॥7॥
भावार्थ:-
हे भाई, इस प्रकार (धर्माचार में प्रवृत्त सात्विकी श्रद्धा रूपी गो से भाव, निवृत्ति और वश में किए हुए निर्मल मन की सहायता से) परम धर्ममय दूध दुहकर उसे निष्काम भाव रूपी अग्नि पर भली-भाँति औटावें। फिर क्षमा और संतोष रूपी हवा से उसे ठंडा करें और धैर्य तथा शम (मन का निग्रह) रूपी जामन देकर उसे जमावें॥7॥
*** मुदिताँ मथै बिचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुबानी॥ तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता। बिमल बिराग सुभग सुपुनीता॥8॥
भावार्थ:-
तब मुदिता (प्रसन्नता) रूपी कमोरी में तत्व विचार रूपी मथानी से दम (इंद्रिय दमन) के आधार पर (दम रूपी खंभे आदि के सहारे) सत्य और सुंदर वाणी रूपी रस्सी लगाकर उसे मथें और मथकर तब उसमें से निर्मल, सुंदर और अत्यंत पवित्र वैराग्य रूपी मक्खन निकाल लें॥8॥
दोहा :
*** जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ। बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ॥117 क॥
भावार्थ:-
तब योग रूपी अग्नि प्रकट करके उसमें समस्त शुभाशुभ कर्म रूपी ईंधन लगा दें (सब कर्मों को योग रूपी अग्नि में भस्म कर दें)। जब (वैराग्य रूपी मक्खन का) ममता रूपी मल, जल जाए, तब (बचे हुए) ज्ञान रूपी घी को (निश्चयात्मिका) बुद्धि से ठंडा करें॥117 (क)॥
*** तब बिग्यानरूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ। चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ॥117 ख॥
भावार्थ:-
तब विज्ञान रूपिणी बुद्धि उस (ज्ञान रूपी) निर्मल घी को पाकर उससे चित्त रूपी दीए को भरकर,

समता की दीवट बनाकर, उस पर उसे दृढ़तापूर्वक (जमाकर) रखें॥117 (ख)॥

*** तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि। तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि॥117 ग॥

भावार्थ:-

(जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति) तीनों अवस्थाएँ और (सत्त्व, रज और तम) तीनों गुण रूपी कपास से तुरीयावस्था रूपी रूई को निकालकर और फिर उसे सँवारकर उसकी सुंदर कड़ी बत्ती बनाएँ॥117 (ग)॥

सोरठा :

*** एहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिग्यानमय। जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब॥117 घ॥

भावार्थ:-

इस प्रकार तेज की राशि विज्ञानमय दीपक को जलावें, जिसके समीप जाते ही मद आदि सब पतंगे जल जाएँ॥117 (घ)॥

चौपाई :

*** सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा। दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा॥ आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा॥1॥

भावार्थ:-

'सोऽहमस्मि' (वह ब्रह्म मैं हूँ) यह जो अखंड (तैलधारावत् कभी न टूटने वाली) वृत्ति है, वही (उस ज्ञानदीपक की) परम प्रचंड दीपशिखा (लौ) है। (इस प्रकार) जब आत्मानुभव के सुख का सुंदर प्रकाश फैलता है, तब संसार के मूल भेद रूपी भ्रम का नाश हो जाता है,॥1॥

*** प्रबल अबिद्या कर परिवारा। मोह आदि तब मिटइ अपारा॥ तब सोइ बुद्धि पाइ उँजिआरा। उर गृहँ बैठि ग्रंथि निरुआरा॥2॥

भावार्थ:-

और महान् बलवती अविद्या के परिवार मोह आदि का अपार अंधकार मिट जाता है। तब वही (विज्ञानरूपिणी) बुद्धि (आत्मानुभव रूप) प्रकाश को पाकर हृदय रूपी घर में बैठकर उस जड़ चेतन की गाँठ को खोलती है॥2॥

*** छोरन ग्रंथि पाव जौं सोई। तब यह जीव कृतारथ होई॥ छोरत ग्रंथ जानि खगराया। बिघ्न नेक करइ तब माया॥3॥

भावार्थ:-

यदि वह (विज्ञान रूपिणी बुद्धि) उस गाँठ को खोलने पावे, तब यह जीव कृतार्थ हो, परंतु हे पक्षीराज गरुड़जी! गाँठ खोलते हुए जानकर माया फिर अनेकों विघ्न करती है॥3॥

*** रिद्धि-सिद्धि प्रेरइ बहु भाई। बुद्धिहि लोभ दिखावहिं आई॥ कल बल छल करि जाहिं समीपा।

अंचल बात बुझावहिं दीपा॥4॥

भावार्थ:-

हे भाई! वह बहुत सी ऋद्धि-सिद्धियों को भेजती है, जो आकर बुद्धि को लोभ दिखाती हैं और वे ऋद्धि-सिद्धियाँ कल (कला), बल और छल करके समीप जाती और आँचल की वायु से उस ज्ञान रूपी दीपक को बुझा देती हैं॥4॥

*** होइ बुद्धि जौं परम सयानी। तिन्ह तन चितव न अनहित जानी॥ जौं तेहि बिघ्न बुद्धि नहिं बाधी। तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी॥5॥

भावार्थ:-

यदि बुद्धि बहुत ही सयानी हुई तो वह उन (ऋद्धि-सिद्धियों) को अहितकर (हानिकर) समझकर उनकी ओर ताकती नहीं। इस प्रकार यदि माया के विघ्नों से बुद्धि को बाधा न हुई तो फिर देवता उपाधि (विघ्न) करते हैं॥5॥

*** इंद्री द्वार झरोखा नाना। तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना॥ आवत देखहिं बिषय बयारी। ते हठि देहिं कपाट उघारी॥6॥

भावार्थ:-

इंद्रियों के द्वार हृदय रूपी घर के अनेकों झरोखे हैं। वहाँ-वहाँ (प्रत्येक झरोखे पर) देवता थाना किए (अड्डा जमाकर) बैठे हैं। ज्यों ही वे विषय रूपी हवा को आते देखते हैं, त्यों ही हठपूर्वक किवाड़ खोल देते हैं॥6॥

*** जब सो प्रभंजन उर गृहँ जाई। तबहिं दीप बिग्यान बुझाई॥ ग्रंथि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भइ बिषय बतासा॥7॥

भावार्थ:-

सज्यों ही वह तेज हवा हृदय रूपी घर में जाती है, त्यों ही वह विज्ञान रूपी दीपक बुझ जाता है। गाँठ भी नहीं छूटी और वह (आत्मानुभव रूप) प्रकाश भी मिट गया। विषय रूपी हवा से बुद्धि व्याकुल हो गई (सारा किया-कराया चौपट हो गया)॥7॥

*** इंद्रिन्ह सुरन्ह न ग्यान सोहाई। बिषय भोग पर प्रीति सदाई॥ बिषय समीर बुद्धि कत भोरी। तेहि बिधि दीप को बार बहोरी॥8॥

भावार्थ:-

इंद्रियों और उनके देवताओं को ज्ञान (स्वाभाविक ही) नहीं सुहाता, क्योंकि उनकी विषय-भोगों में सदा ही प्रीति रहती है और बुद्धि को भी विषय रूपी हवा ने बावली बना दिया। तब फिर (दोबारा) उस ज्ञान दीप को उसी प्रकार से कौन जलावे?॥8॥

दोहा :

*** तब फिरि जीव बिबिधि बिधि पावइ संसृति क्लेस। हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ बिहगेस॥118 क॥

भावार्थ:-

(इस प्रकार ज्ञान दीपक के बुझ जाने पर) तब फिर जीव अनेकों प्रकार से संसृति (जन्म-मरणादि) के क्लेश पाता है। हे पक्षीराज! हरि की माया अत्यंत दुस्तर है, वह सहज ही में तरी नहीं जा सकती॥118 (क)॥

*** कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक। होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक॥118 ख॥

भावार्थ:-

ज्ञान कहने (समझाने) में कठिन, समझने में कठिन और साधने में भी कठिन है। यदि घुणाक्षर न्याय से (संयोगवश) कदाचित् यह ज्ञान हो भी जाए, तो फिर (उसे बचाए रखने में) अनेकों विघ्न हैं॥118 (ख)॥

चौपाई :

*** ग्यान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा॥ जो निर्बिघ्न पंथ निर्बहई। सो कैवल्य परम पद लहई॥1॥

भावार्थ:-

ज्ञान का मार्ग कृपाण (दोधारी तलवार) की धार के समान है। हे पक्षीराज! इस मार्ग से गिरते देर नहीं लगती। जो इस मार्ग को निर्विघ्न निबाह ले जाता है, वही कैवल्य (मोक्ष) रूप परमपद को प्राप्त करता है॥1॥

*** अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद॥ राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं॥2॥

भावार्थ:-

संत, पुराण, वेद और (तंत्र आदि) शास्त्र (सब) यह कहते हैं कि कैवल्य रूप परमपद अत्यंत दुर्लभ है, किंतु हे गोसाईं! वही (अत्यंत दुर्लभ) मुक्ति श्री रामजी को भजने से बिना इच्छा किए भी जबर्दस्ती आ जाती है॥2॥

*** जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करै उपाई॥ तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई। रहि न सकइ हरि भगति बिहाई॥3॥

भावार्थ:-

जैसे स्थल के बिना जल नहीं रह सकता, चाहे कोई करोड़ों प्रकार के उपाय क्यों न करे। वैसे ही, हे पक्षीराज! सुनिए, मोक्षसुख भी श्री हरि की भक्ति को छोड़कर नहीं रह सकता॥3॥

*** अस बिचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादर भगति लुभाने॥ भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अबिद्या नासा॥4॥

भावार्थ:-

ऐसा विचार कर बुद्धिमान् हरि भक्त भक्ति पर लुभाए रहकर मुक्ति का तिरस्कार कर देते हैं।

भक्ति करने से संसृति (जन्म-मृत्यु रूप संसार) की जड़ अविद्या बिना ही यंत्र और परिश्रम के (अपने आप) वैसे ही नष्ट हो जाती है,॥4॥

***भोजन करिअ तृपिति हित लागी। जिमि सो असन पचवै जठरागी॥ असि हरि भगति सुगम सुखदाई। को अस मूढ़ न जाहि सोहाई॥5॥

भावार्थ:-

जैसे भोजन किया तो जाता है तृप्ति के लिए और उस भोजन को जठराग्नि अपने आप (बिना हमारी चेष्टा के) पचा डालती है, ऐसी सुगम और परम सुख देने वाली हरि भक्ति जिसे न सुहावे, ऐसा मूढ़ कौन होगा?॥5॥

दोहा :

*** सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि। भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारि॥119 क॥

भावार्थ:-

हे सर्पों के शत्रु गरुड़जी! मैं सेवक हूँ और भगवान् मेरे सेव्य (स्वामी) हैं, इस भाव के बिना संसार रूपी समुद्र से तरना नहीं हो सकता। ऐसा सिद्धांत विचारकर श्री रामचंद्रजी के चरण कमलों का भजन कीजिए॥119 (क)॥

*** जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य। अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य॥119 ख॥

भावार्थ:-

जो चेतन को जड़ कर देता है और जड़ को चेतन कर देता है, ऐसे समर्थ श्री रघुनाथजी को जो जीव भजते हैं, वे धन्य हैं॥119 (ख)॥

चौपाई :

*** कहेउँ ग्यान सिद्धांत बुझाई। सुनहु भगति मनि कै प्रभुताई॥ राम भगति चिंतामनि सुंदर। बसइ गरुड़ जाके उर अंतर॥1॥

भावार्थ:-

मैंने ज्ञान का सिद्धांत समझाकर कहा। अब भक्ति रूपी मणि की प्रभुता (महिमा) सुनिए। श्री रामजी की भक्ति सुंदर चिंतामणि है। हे गरुड़जी! यह जिसके हृदय के अंदर बसती है,॥1॥

***परम प्रकास रूप दिन राती। नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती॥ मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा॥2॥

भावार्थ:-

वह दिन-रात (अपने आप ही) परम प्रकाश रूप रहता है। उसको दीपक, घी और बत्ती कुछ भी नहीं चाहिए। (इस प्रकार मणि का एक तो स्वाभाविक प्रकाश रहता है) फिर मोह रूपी दरिद्रता समीप नहीं आती (क्योंकि मणि स्वयं धनरूप है) और (तीसरे) लोभ रूपी हवा उस मणिमय दीप

को बुझा नहीं सकती (क्योंकि मणि स्वयं प्रकाश रूप है, वह किसी दूसरे की सहायता से प्रकाश नहीं करती)॥2॥

*** प्रबल अबिद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई॥ खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं॥3॥

भावार्थ:-

(उसके प्रकाश से) अविद्या का प्रबल अंधकार मिट जाता है। मदादि पतंगों का सारा समूह हार जाता है। जिसके हृदय में भक्ति बसती है, काम, क्रोध और लोभ आदि दुष्ट तो उसके पास भी नहीं जाते॥3॥

*** गरल सुधासम अरि हित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई॥ दब्यापहिं मानस रोग न भारी। जिन्ह के बस सब जीव दुखारी॥4॥

भावार्थ:-

उसके लिए विष अमृत के समान और शत्रु मित्र हो जाता है। उस मणि के बिना कोई सुख नहीं पाता। बड़े-बड़े मानस रोग, जिनके वश होकर सब जीव दुःखी हो रहे हैं, उसको नहीं व्यापते॥4॥

*** राम भगति मनि उर बस जाकें। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें॥ चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥5॥

भावार्थ:-

श्री रामभक्ति रूपी मणि जिसके हृदय में बसती है, उसे स्वप्न में भी लेशमात्र दुःख नहीं होता। जगत में वे ही मनुष्य चतुरों के शिरोमणि हैं जो उस भक्ति रूपी मणि के लिए भलीभाँति यत्न करते हैं॥5॥

*** सो मनि जदपि प्रगट जग अहई। राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई॥ सुगम उपाय पाइबे केरे। नर हतभाग्य देहिं भटभेरे॥6॥

भावार्थ:-

यद्यपि वह मणि जगत् में प्रकट (प्रत्यक्ष) है, पर बिना श्री रामजी की कृपा के उसे कोई पा नहीं सकता। उसके पाने के उपाय भी सुगम ही हैं, पर अभागे मनुष्य उन्हें ठुकरा देते हैं॥6॥

*** पावन पर्बत बेद पुराना। राम कथा रुचिराकर नाना॥ मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ग्यान बिराग नयन उरगारी॥7॥

भावार्थ:-

वेद-पुराण पवित्र पर्वत हैं। श्री रामजी की नाना प्रकार की कथाएँ उन पर्वतों में सुंदर खानें हैं। संत पुरुष (उनकी इन खानों के रहस्य को जानने वाले) मर्मी हैं और सुंदर बुद्धि (खोदने वाली) कुदाल है। हे गरुड़जी! ज्ञान और वैराग्य ये दो उनके नेत्र हैं॥7॥

*** भाव सहित खोजइ जो प्रानी। पाव भगति मनि सब सुख खानी॥ मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा॥8॥

भावार्थ:-

जो प्राणी उसे प्रेम के साथ खोजता है, वह सब सुखों की खान इस भक्ति रूपी मणि को पा जाता है। हे प्रभो! मेरे मन में तो ऐसा विश्वास है कि श्री रामजी के दास श्री रामजी से भी बढ़कर हैं॥8॥

*** राम सिंधु घन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा॥ सब कर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहूँ पाई॥9॥

भावार्थ:-

श्री रामचंद्रजी समुद्र हैं तो धीर संत पुरुष मेघ हैं। श्री हरि चंदन के वृक्ष हैं तो संत पवन हैं। सब साधनों का फल सुंदर हरि भक्ति ही है। उसे संत के बिना किसी ने नहीं पाया॥9॥

*** अस बिचारि जोइ कर सतसंगा। राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा॥10॥

भावार्थ:-

ऐसा विचार कर जो भी संतों का संग करता है, हे गरुड़जी उसके लिए श्री रामजी की भक्ति सुलभ हो जाती है॥10॥

दोहा :

*** ब्रह्म पयोनिधि मंदर ग्यान संत सुर आहिं। कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहिं॥120 क॥

भावार्थ:-

ब्रह्म (वेद) समुद्र है, ज्ञान मंदराचल है और संत देवता हैं, जो उस समुद्र को मथकर कथा रूपी अमृत निकालते हैं, जिसमें भक्ति रूपी मधुरता बसी रहती है॥120 (क)॥

*** बिरति चर्म असि ग्यान मद लोभ मोह रिपु मारि। जय पाइअ सो हरि भगति देखु खगेस बिचारि॥120 ख॥

भावार्थ:-

वैराग्य रूपी ढाल से अपने को बचाते हुए और ज्ञान रूपी तलवार से मद, लोभ और मोह रूपी वैरियों को मारकर जो विजय प्राप्त करती है, वह हरि भक्ति ही है, हे पक्षीराज! इसे विचार कर देखिए॥120 (ख)॥ ***अगला पेज...***